International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

प्राचीन भारत में बाजार–अर्थव्यवस्था का पुनरूत्थान और वीरशैव आंदोलन

डॉ0 अवध पटेल
एम. ए., पीएच.डी. (इतिहास)

वीरशैव आंदोलन या कहें लिंगायत आंदोलन एक शक्तिशाली शैव आंदोलन था। इस आदोलन का जन्म लगभग बारहवीं सदी के अंत ओर तेरहवीं सदी के आरंभ में उत्तर–पश्चिमी कनार्टक में हुआ था। आगे चलकर यह पूरे कर्नाटक और आंध्रप्रदेश के कई हिस्सों में भी फैल गया। इस आंदोलन की प्रमुख विशेषता थी– परंपरागत ब्राह्मणवाद का विरोध जिसने विशेषकर समाज को कठोर जाति वर्गों में बाँटकर स्तरित कर रखा था। सार्जजनिक रूप से मूर्तिपूजा का विरोध भी इस आंदोलन की दूसरी विशेषता थी। अपने जन्म के समय वीरशैव आंदोलन पूर्णतः भाईचारे में विश्वास करता था और खुल्लमखुल्ला जाति व्यवस्था का विरोधी था। इस आंदोलन के अनुयायी किसी प्रकार के जातिगत भेदभाव में विश्वास नहीं करते थे। किन्तु शीघ्र ही इस संप्रदाय में भी जन्मगत विशेषाधिकार और व्यवसायगत शुचिता के आधार पर सामाजिक अनन्यता पनप गई, ठीक उसी तरह से जिस तरह से अन्य हिन्दुओं में ब्राह्मणवाद–आधारित वर्ण व्यवस्था लागू थी। जबकि इस संप्रदाय के अनुयायी आरंभ में जातिगत या स्तरगत किसी भी प्रकार के भेदभाव के सख्त खिलाफ थे।

वीरशैव संप्रदाय के प्रमुख अनुयायियों में पुरोहित, व्यापारी, किसान और दस्तकार वर्ग के लोग हैं। पुरोहित वर्ग के लोग सामूहिक रूप से जंगम के नाम से जाने जाते हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय उपदेश देना और आत्मा की शांति के लिए सहायता देना है। ये पुरोहितेतर वर्ग के लोगों से प्राप्त दान से अपना जीविका निर्वाह करते हैं। किन्तु इनमें से कुछ व्यक्ति अपनी आय में वृद्धि के लिए व्यापार या दुकानदारी का पेशा भी करते हैं। वीरशैव संप्रदाय का जंगम नाम से जाना जाने वाला पुरोहित वर्ग मूलतः ब्राह्मण पुरोहित वर्ग का ही अंग था। किन्तु जब वंशागत मंदिर के पुजारियों का वर्चस्व बढने लगा तो ये लोग उस वर्ग से टुटकर अलग हो गए और इस तरह से अपनी यजमान वृति पर आँच नहीं आने दी। इस संप्रदाय में व्यापारी वर्ग के लोगों की प्रमुखता है और ये प्रभावशाली भी हैं। जंगमों को मिलाकर इस वर्ग के लोगों के लिए पंचमशाली जैसे जातिवाचक नाम का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इन दोनों वर्गों में परस्पर रोटी–बेटी का व्यवहार नहीं है। तीसरा वर्ग किसानों और दस्तकारों का है। दस्तकारों में जुलाहों, दर्जियों और तेलियों की बहुतायत है। सभी

स्थानों पर लिंगायतों में इन्हीं लोगों की संख्या सबसे अधिक है। इन्हें पंचमशालियों से अलग वर्ग में माना जाता है। इस वर्ग के लिंगायतों को आठ संस्कार करने का अधिकार तो मिला हुआ है किन्तु इनका पंचमों से रोटी–बेटी का व्यवहार नहीं हो सकता अर्थात ये न तो पंचमों के साथ बैठकार भोजन कर सकते हैं और न ही उनके साथ वैवाहिक संबंध जोड़ सकते है। लिंगायतों के निम्नतम वर्ग में मोची, चर्मकार, धोबी, मछुआरे और कुछ अछूत सम्मिलित हैं। जिन्हें न तो पवित्र लिंगम् धारण करने का अधिकार है और न ही आठों संस्कार (आष्टवरण) करने का।

कनार्टक के व्यावसायिक दृष्टि से समृद्ध तीन जिलों–धारवाड़, बीजापुर और बेलगाम में लिंगायतों की संख्या सबसे अधिक है। धारवाड़ जिले की कुल जनसंख्या में लगभग आधे लोग लिंगायत संप्रदाय के अनुयायी है जबकि अन्य जिलों में इनक संख्या 40 प्रतिशत के आसपास है। धारवाड़ के लिंगायतों में 12 प्रतिशत व्यापारी तथा 55 प्रतिशत किसान और दस्तकार है। जबकि बेलगाम में इनका प्रतिशत क्रमशः 14 और 59 प्रतिशत एवं बीजापुर में क्रमशः 12 और 43 प्रतिशत बैठता है। स्पष्टतः वीरशैव संप्रदाय की रचना मूलतः उन सुपरिभषित सामाजिक वर्गों ने मिलकर की थी जो उत्पादन और वितरण की विविध प्रक्रियाओं से जुड़े हुए थे। लगता है, ये लोग एक संप्रदाय के रूप में इस लिए पठित हुए ताकि सामंतवादी बिचौलियों से बचकर व्यापारी वर्ग और सामाजिक वस्तुओं के उत्पादनकर्ताओं के हितों की रक्षा कर सकें। उस समय यह बिचौलिया वर्ग वास्तविक उत्पादनकर्ताओं और वस्तु निर्मातओं के साथ गुलामों जैसा व्यवहार कर फल–फूल रहा था। इसीलिए किसान और दस्तकार हतोत्साहित होकर प्रायः उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों में कम रूचि लेने लग गए थे। इन किसानों और औद्योगिक कामगारों की स्थिति प्राचीन ब्राम्मणवादी व्यवस्था के अंतर्गत घृणित शूद्रों से अधिक अच्छी नहीं थी। इसलिए जब वीरशैव संप्रदाय का जन्म हुआ और ये लोग उसके अनुयायी बन गए तो ऐसा लगने लगा जैसे उन्हें अपनी पुरानी दलित स्थिति से मुक्ति मिल गई हो और उनके काम के अनुरूप उनकी प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो गई हो।

वीरशैव संप्रदाय के विकास का अध्ययन करने वाले इतिहासकार इस संप्रदाय के गठन का आधार दार्शनिक प्रचार और पंथगत तनाव को मानते हैं। किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने इस संप्रदाय के जन्म की भौतिक पृष्ठभूमि पर ध्यान नहीं दिया। उदाहरण के लिए, उनकी मान्यता है कि कश्मीर और बंगाल में प्रचलित शैव संप्रदाय के सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार होने के कारण दक्षिण में इन वीरशैव संप्रदाय का जन्म हुआ। उत्तर की शैव विचार पद्धति के कुछ लक्षण दक्षिण के परवर्ती दार्शनिक साहित्य में तो नजर आते हैं, किन्तु इनसे इन प्रश्नों का उतर नहीं मिलता कि दक्षिण में वीरशैव जैसा जुझारू या संघर्षप्रिय धार्मिक संप्रदाय कैसे पनपा तथा इस संप्रदाय को व्यापारी और उत्पादक वर्गों का ही भारी समर्थन क्यों मिला। इनके अतिरिक्त एक अन्य विचारणीय तथ्य यह भी है कि इस आंदोलन का जन्म दक्षिण के उस क्षेत्र में हुआ जहाँ दसवीं से लेकर

तेरहवीं सदी के बीच वाणिज्यिक गतिविधियों को बोलबाला रहा। इसी तरह से, जब ये इतिहासकार वीरशैव आंदोलन को जैन धर्म विरोधी आंदोलन मानते हैं, तो ऐसा लगता है मानो तत्कालीन पंथगत हिंसा को ये लोग काफी बढ़ा–चढ़ाकर बताते हुए केवल उसे ही इस आंदोलन के जन्म श्रेय दे रहे हों जबकि वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। उस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि उग्र हिंसा को रोगाकक ही नहीं जा सकता था। वीरशैव और जैन–दोनों को ही धनी व्यापारी और व्यवसायी वर्गों का समर्थन प्राप्त था। इसे देखते हुए यह मानना अनुचित होगा कि केवल धार्मिक विरोध के कारण ही इन दोनों संप्रदायों के बीच उग्र हिंसा भड़क उठती होगी। उत्तर–पश्चिमी कार्नाटक मं ब्राह्ण व्यापारियों के, जिनमें से कई उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण थे, मुख्य प्रतिद्वंद्वी अरब व्यापारी और जैन व्यापारी थे। वीरबनुंज व्यापारियों में कई जैन थे। 'वीरबनुंज' के नाम से प्रसिद्व यह व्यापारी वर्ग आगे चलकर वीरशैव संप्रदाय का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग बन गया जिसे आज भी बनजिग और लिंग बनजिग के नाम से जाना जाता है। बेलगाम जिले के ऐतिहासिक अभिलेखों में मुम्मुरिदंडो का कई जगह उल्लेख मिलता है। इन मुम्मुरिदंडों में कई जैन व्यापारी सम्मिलित थे। कई शिलालेखों में इन जैन व्यापारियों की प्रशस्ति पाई गई है। मध्यकालीन कर्नाटक में 'अहिहोल (ऐहोल) के पाँच सौ स्वामी' के नाम से ख्यात एक शक्तिशाली वणिक मंडल था। हो सकता है कि इस मंडल में कई जैन व्यापारी भी सम्मिलित रहे हों। सन 1050 के एक शिकारपुर अभिलेख में ऐहोल के पाँच सौ स्वामियों को जैन वंश में उत्पन्न बताया गया है। इसी तरह से नानादेशी और उभयनानादेशी सार्थकवाहों में से कई जैन धर्म और बौद्ध धर्म के मानने वाले थे। सुदूर देशों के साथ वाणिज्य–व्यापार पर इन सार्थवाहों का एकाधिकार था। हो सकता है कि इस क्षेत्र में व्यापार के पुनरूत्थान के साथ–साथ वाणिज्यिक प्रतिस्पर्धा बढ़ गई हो और इसके परिणामस्वरूप ही ब्राह्मण व्यापारियों और जैन व्यापारियों के बीच तनाव उत्पन्न हो गया हो। जो अंततः एक नए संप्रदाय के उभरने का कारण बना था। जब इस प्रकार का संप्रदाय बन ही गया तो यह भी हो सकता है कि तत्कालीन आवश्यकताओं के वशीभूत होकर उसने शक्तिशाली जैनों के विरूद्ध आक्रामक कार्रवाई भी की हो।

कुल मिलाकर यहा कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत मे बाजार–अर्थव्यवस्था का पुनरूत्थान और वीरशैव आंदोलन एक ऐसा विषय है जो प्राचीन काल से लेकर अब तक अध्ययन और शोध के लिए उपयुक्त है जो हमारी समाजिक व्यवस्था का वयां करती हैं।

संदर्भ सूची :–

1. विश्व इतिहास 1500–1950 – जैन एवं माथुर, इतिहास परिषद्, नई दिल्ली, पृष्ठ 55
2. भारत का प्राचीन इतिहास – आर. एस. शर्मा – ऑक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 84
3. प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का इतिहास – उपेन्द्र सिंह – ऑक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 24
4. मध्यकालीन भारत का इतिहास – सतीस चंद्र – ऑक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 32
5. एस0बी0देव की पुस्तक हिस्टरी ऑफ जैन मोनेकिज्म के पृष्ठ 282 पर उद्धत वृहत कल्प भाष्य, I, पृष्ठ 373–375
6. एस0बी0देव की पुस्तक हिस्टरी ऑफ जैन मोनेकिज्म के पृष्ठ 282 पर उद्धत ओधनिर्युक्ति, पृष्ठ 116–117
7. पुरालेखीय स्रोत – आंध्र प्रदेश सरकार की पुरातात्विक प्रकाशन माला
8. एपिग्राफिया इंडिका, कलकत्ता/दिल्ली, 1892 (सरकारी प्रकाशन)
9. राय निहाररंजन, 'द रूरल–अर्बन डायकोटमी, इन इंडियन ट्रेडिशन एंड हिस्टरी', अध्यक्षीय अभिषण, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की जयंती के क अवसर पर 29 अगस्त 1976.
10. 'दि मेडवियल फैक्टरी इन इंडियन हिस्टरी, अध्यक्षी अभिभाषण, प्रोसीडिंग्ज ऑफ दि हिस्टरी कांग्रेस, 29वां अधिवेशन, पटियाला, 1968.